एक शरारत
जो अकसर याद आती है!

चित्र: भगत सिंह ई. के.

उन दिनों कितने खेल होते थे। उन दिनों यानी अब से तीस साल पहले। खूब मज़ेदार! गुल्ली डंडा, गुलाम डंडी, जंज़ीर (चैन), गप्पे, गपंची। हर मौसम के खेल होते थे। कुछ नए बन भी जाया करते थे। उन दिनों भी बड़ों की पहरेदारियाँ हुआ ही करती थीं। नाम से किसी दोस्त को बुलाना जैसे आग से खेलना होता। तो हम कुछ खास आवाज़ निकालकर बुलाते। जैसे, कोयल की आवाज़ निकाल के। थोड़े दिनों में ही इस आवाज़ का राज़ खुल जाता। इसलिए बुलाने की आवाज़ और संकेत हमें बदलते रहने पड़ते थे।

साल भर का सबसे अच्छा और खूबसूरत दिन आखिरी पेपर का दिन होता था। उस दिन ऐसा लगता था जैसे कि किसी हाथी के पैरों तले से साबुत निकल आए हों। परीक्षा सचमुच खत्म हो गई है, अब मज़े के दिन आए हैं यह मानने में भी थोड़ा वक्त लग जाया करता था। उस दिन एक बैठक होती थी। इस बैठक में कई निर्णय लिए जाते। एक निर्णय तो हर साल आम सहमति से लिया जाता कि अब रोज़ सुबह उठकर घूमने जाएँगे। थोड़ा शरीर बनाएँगे और थोड़ी मस्ती करेंगे। शायद वर्जिश और सुबह घूमने का कहकर घर से सुबह-सुबह निकल पड़ना ज़्यादा मुश्किल नहीं होता था।

छुट्टियों में समय खूब होता था। तरह तरह के फितूर मन में आते रहते। मई-जून में गर्मियाँ के अलावा कुछ फलता-फूलता तो वो होतीं हमारी शरारतें। एक शरारत तो आज भी ज़्यों की त्यों याद है – पैसे की थोड़ी तंगी थी। हमें खेल का सामान खरीदने वगैरह के लिए पैसे की सख्त ज़रूरत थी। पैसे के लिए क्या करें। थोड़े दिनों पहले ही किसी ने अर्थी के लिए घरों-घर जाकर चन्दा इकट्ठा किया था। हमारे एक दोस्त ने कहा कि हम झूठमूठ की अर्थी का चन्दा माँग लेते हैं। अर्थी के लिए कोई मना नहीं करता। थोड़ी ना-नकुर के बाद हम सब तैयार हो गए। पर, बिना अर्थी के पैसे कौन देगा? और अर्थी कहाँ से आएगी? फिर फैसला लिया कि कामचलाऊ अर्थी तैयार करनी चाहिए। आधे-एक घण्टे की मेहनत के बाद अर्थी के लिए ज़रूरी सामान इकट्ठा हो गया था। अब, बस एक मुर्दे की ज़रूरत थी। कोई भी अर्थी पर मुर्दा बन कर लेटने को तैयार नहीं था। मेरा एक दोस्त तैयार हुआ पर वह बहुत भारी था। ज़ाहिर है उसकी अर्थी निकालने की कुव्वत हम में नहीं थी। आखिर एक दुबले-पतले लड़के को तैयार किया गया। हम अर्थी लेकर दस कदम ही चले थे कि हमें कोई जाना-पहचाना व्यक्ति आता दिखा। हम जल्दी-जल्दी चलने लगे। हम सोच रहे थे कि जल्दी से चन्दा माँगने का काम शुरू हो। शाम का समय था। वे जैसे ही थोड़ा और पास आए अर्थी के आगे मटका लेकर चल रहे मेरे दोस्त ने हमसे कहा, "चिण्टू, देख कौन आ रहा है?" उन्हें देखते ही मेरे होश फाख्ता हो गए। ये तो संजू के पिताजी हैं। ये सुनते ही मुर्दा बन कर लेटा संजू अर्थी पर बँधा फड़फड़ाने लगा, "अरे, भागो, पीछे भागो।" किसी को कंधे पर लेकर भागना बहुत मुश्किल काम है। हम पीछे पलटके तेज़-तेज़ चलने लगे। संजू के पिता को शायद हम पर शक हो गया था। वे भी तेज़-तेज़ चलने लगे थे। चलने क्या हमारा पीछा करने लगे थे। संजू लगातार अर्थी पर बँधा-बँधा छटपटा रहा था। अर्थी सँभालना और मुश्किल होता जा रहा था। जब देखा कि संजू के पिता जी हमारे बिल्कुल करीब पहुँच चुके हैं बल्लू ने मटका फेंककर दौड़ लगा दी। बल्लू को भागता देख हमारे दूसरे दोस्त भी भागने लगे। हमारी हिम्मत ने भी जबाव दे दिया। हम अर्थी को नीचे पटककर भाग खड़े हुए। संजू के पिता जी संजू को अर्थी में छटपटाता देखकर आग बबूला हो गए। हम दूर खड़े अपने मुर्दे की पिटाई का दृश्य देख रहे थे। एक तरफ दुख हो रहा था कि हमारा दोस्त पिट रहा है दूसरी तरफ मार से बचने के लिए मुर्दे की छटपटाहट देख कर हँसी भी आ रही थी। अगले दिन हमने एक बार फिर तय किया कि ऐसी कोई हरकत नहीं करेंगे कि...

(अपने बचपन का यह किस्सा अरविन्द जैन ने हमें सुनाया था।)